श्रीपराशर उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु परमात्मा महीधरः। उज्जहार क्षितिं क्षिप्रं न्यस्तवांश्च महाम्भसि ॥४५॥
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता। विततत्वात्तु देहस्य न मही याति सम्प्लवम् ॥४६॥
ततः क्षितिं समां कृत्वा पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन्। यथाविभागं भगवाननादिः परमेश्वरः ॥४७॥
प्राक्सर्गदग्धानखिलान्पर्वतान्पृथिवीतले। अमोघेन प्रभावेण ससर्जामोघवाञ्छितः ॥४८॥
भूविभागं ततः कृत्वा सप्तद्वीपान्यथातथम्। भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् ॥४९॥
ब्रह्मरूपधरो देवस्ततोऽसौ रजसा वृतः। चकार सृष्टिं भगवांश्चतुर्वक्त्रधरो हरिः ॥५०॥
निमित्तमात्रमेवाऽसौ सृज्यानां सर्गकर्मणि। प्रधानकारणीभूता यतो वै सृज्यशक्तयः ॥५१॥
निमित्तमात्रं मुक्त्वैवं नान्यत्किञ्चिदपेक्षते। नीयते तपतां श्रेष्ठ स्वशक्तया वस्तु वस्तुताम् ॥५२॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पाँचवाँ अध्याय

श्रीमैत्रेय उवाच

यथा ससर्ज देवोऽसौ देवर्षिपितृदानवान्। मनुष्यतिर्यग्वृक्षादीन्भूव्योमसलिलौकसः ॥१॥

को शान्ति प्रदान करें ॥४४॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर पृथिवी को धारण करने वाले परमात्मा वराह भगवान् शीघ्रता से ऊपर लाये और उसे महार्णव के ऊपर स्थापित कर दिए।॥४५॥ उस जल समूह के ऊपर बड़ी नौका के समान स्थित यह पृथिवी आकार के विस्तृत होने के कारण उसमें डूबती नहीं है।॥४६॥ अनादि परमेश्वर भगवान् वराह ने उसके पश्चात् पृथिवी को समतल बनाकर उस पर जहाँ-तहाँ विभाग करके पर्वतों को स्थापित किया ॥४७॥ पूर्व कल्प के अन्त में दग्ध हो गये पर्वतों को सत्य सङ्कल्प वाले भगवान् ने अपने अमोघ प्रभाव से रच दिया ॥४८॥ उसके पश्चात् सप्त द्वीप आदि के क्रम से पृथिवी का विभाग करके श्रीभगवान् ने भू आदि (भुवः स्वः तथा महः) इन चारो लोकों को पहले कल्प के समान रच दिया ॥४९॥ उसके पश्चात् भगवान् श्रीहरि ने रजोगुण से युक्त होकर चार मुखों वाले ब्रह्माजी का रूप धारण करके सृष्टि की रचना की ॥५०॥ सृज्य पदार्थों की सृष्टि करने में परमात्मा तो निमित्त कारण ही है, क्योंकि सृष्टि के कार्य में प्रधान कारण तो सृज्य शक्तियाँ (जीवों के प्राचीन कर्मों की वासना) ही होती है ॥५१॥ अतएव हे तपस्वियों में श्रेष्ठ मैत्रेय ! सृष्टि में निमित्त कारण परमात्मा से भिन्न किसी दूसरी वस्तु की अपेक्षा नहीं होती है, क्योंकि जीव तो अपने प्राचीन कर्म के अनुसार ही देवादि शरीर को प्राप्त करते हैं ॥५२॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

पञ्च पर्वात्मक अविद्यासर्ग, षट्प्रकारक सर्ग, आदि विविध सर्गों का वर्णन

श्रीमैत्रेय महर्षि ने कहा— हे द्विज ! सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् ब्रह्माजी पृथिवी, आकाश तथा जल में

यद्गुणं यत्स्वभावं च यद्रूपं च जगद्द्विज। सर्गादौ सृष्टवान्ब्रह्मा तन्ममाचक्ष्व कृत्स्नशः ॥२॥

श्रीपराशर उवाच

मैत्रेय कथयाम्येतच्छृणुष्व सुसमाहितः। यथा ससर्ज देवोऽसौ देवादीनखिलान्विभुः ॥३॥
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा। अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥४॥
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः। अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥५॥
पञ्चधाऽवस्थितः सर्गोध्यायतोऽप्रतिबोधवान्। बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृतात्मा नगात्मकः ॥६॥
मुख्या नगा यतः प्रोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ॥७॥
तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्यदपरं पुनः ॥८॥
तस्याभिध्यायतः सर्गस्तिर्यक्स्त्रोताभ्यवर्त्तत। यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तिस्स तिर्यक्स्त्रोतास्ततः स्मृतः ॥९॥
पश्वादयस्ते विख्यातास्तमः प्राया ह्यवेदिनः। उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥१०॥
अहङ्कृता अहम्माना अष्टाविंशद्वधात्मकाः। अन्तः प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च परस्परम्॥११॥

देवता, ऋषि, पितृगण, दानव, मनुष्य, तिर्यक् (पशु-पक्षी) वृक्ष आदि, जिस गुण, जिस स्वभाव, तथा जिस रूप वाले जगत् की रचना की उसे आप मुझे पूर्ण रूप से सुनायें ॥१-२॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा**— हे मैत्रेय ! व्यापक श्रीभगवान् ने जिस तरह समस्त देवताओं आदि की रचना की उसे मैं सुना रहा हूँ तुम सुनो ॥३॥ पूर्व कल्प में जैसी सृष्टि थी उसका चिन्तन करते हुए सर्वप्रथम अबुद्धि (असावधानी) पूर्वक सर्वप्रथम तमोगुणी सर्ग उद्भूत हुआ॥४॥ उन महात्मा से सर्वप्रथम तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र तथा अन्धतामिस्र इन पाञ्च पर्वों वाला अविद्या नामक सर्ग उद्भूत हुआ ॥५॥ उसका ध्यान करने पर ज्ञान शून्य भीतर तथा बाहर दोनों ओर से प्रकाश रहित (तमोमय) तथा जड़, नगात्मक (वृक्ष लता आदि स्थावर रूप) पाँच प्रकार का सर्ग हुआ ॥६॥ इस सर्ग में चूकि सबसे मुख्य नग (स्थावर वृक्ष, लता आदि) ही कहे गये हैं, अतएव इस सर्ग को मुख्य सर्ग कहा जाता है ॥७॥ उस सर्ग को पुरुषार्थ का असाधक देखकर उन्होंने (ब्रह्माजी ने) दूसरे सर्ग का ध्यान किया, तो उससे तिर्यक् स्त्रोत सृष्टि उत्पन्न हुयी। चूकि यह सृष्टि वायु के समान तिर्यक् (तिरछी) चलती है, इसीलिए इसको तिर्यक् स्त्रोत कहा जाता है ॥८-९॥ इस सृष्टि के जीव पशु पक्षी के नाम से प्रख्यात हैं। ये तमोगुण प्रधान, अज्ञानी, अनुचित मार्ग को ही अपनाने वाले, अज्ञान में ही ज्ञान को मानने वाले ॥१०॥ अहङ्कार प्रधान, अभिमानी, अठाइस प्रकार के वधो से युक्त अपने आन्तरिक सुख-दुःख को समझने वाले, तथा एक-दूसरे की प्रवृत्ति को नहीं समझने वाले होते हैं ॥११॥ उस (तिर्यक् स्त्रोतः

सांख्यकारिकाकार ने अट्ठाइस प्रकार के वधों का वर्णन इस प्रकार से किया है—

एकदशेन्द्रिय वधाः सहबुद्धिवधै रशक्तिरुद्दिष्टा। सप्तदश वधा बुद्धेः विपर्ययांत् तुष्टि सिद्धीनाम् ॥
आध्यात्मिक्यश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालाख्याः। बाह्या विषयोपरमात् पञ्च च नव तुष्टयोभिमताः ॥
ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः। दानञ्च सिद्धयोष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः ॥

(सां० का० ४९-५१)

अर्थात् ग्यारह इन्द्रियवध, तथा तुष्टि एवं सिद्धि के विपर्यय से सत्रह बुद्धिवध ये कुल अट्ठाइस वध अशक्ति कहे जाते हैं। प्रकृति, उपादान, काल तथा भाग्य ये चार आध्यात्मिक (आभ्यन्तर) तुष्टियाँ हैं। पाञ्चों ज्ञानेन्द्रियों के बाह्य विषयों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द) की निवृत्ति ये पाञ्च वाह्य तुष्टियाँ हैं। इस तरह कुल नव तुष्टियाँ हैं। ऊहा, शब्द, अध्ययन, अध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक तीनों प्रकार के दुःखों का विघात सुहृत् प्राप्ति और दान; ये आठ सिद्धियाँ हैं। इस तरह (इन्द्रियाशक्ति,

तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत्। ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु सात्त्विकोर्ध्वमवर्त्तत ॥१२॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः। प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतोद्भवाः स्मृताः ॥१३॥
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गस्तु स स्मृतः। तस्मिन्सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ॥१४॥
ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम्। असाधकांस्तु ताञ्ज्ञात्वा मुख्यसर्गादिसम्भवान् ॥१५॥
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः। प्रादुर्बभूव चाव्यक्तादर्वाक्स्रोतास्तु साधकः ॥१६॥
यस्मादर्वाग्व्यवर्त्तन्त ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तु ते। ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ॥१७॥
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः। प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकास्तु ते ॥१८॥
इत्येते कथिताः सर्गाः षडत्र मुनिसत्तम। प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ॥१९॥
तन्मात्राणां द्वितीयश्च भूतसर्गो हि स स्मृतः। वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥२०॥

नामक) सर्ग को भी पुरुषार्थ का साधक नही मानकर पुनः सर्ग का चिन्तन करने पर एक दूसरा सर्ग हुआ । वह ऊर्ध्व स्रोतों का सर्ग था । उस ऊर्ध्वस्रोत सर्ग के जीव सात्विक थे और ऊपर के लोकों में रहने लगे ॥१२॥ उस ऊर्ध्वस्रोत सर्ग के जीव विषय सुख के प्रेमी थे । वे बाह्य तथा आन्तरिक दृष्टि से युक्त तथा बाह्य एवं आन्तर ज्ञान से युक्त थे ॥१३॥ वह तृतीय सर्ग देवताओं का सर्ग था । उससे ब्रह्माजी को सन्तोष हुआ । और वे अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥१४॥ उन तीनों प्रकार की सृष्टियों को पुरुषार्थ का असाधक समझकर सत्यसङ्कल्प ब्रह्माजी ने एक उत्तम कोटि के सर्ग का चिन्तन किया ॥१५॥ इस तरह से ब्रह्माजी के चिन्तन करने पर प्रकृति से अपने पुरुषार्थ को सिद्ध करने वाला अर्वाक् स्रोत नामक सर्ग हुआ ॥१६॥ चूकि इस सर्ग (सृष्टि) के जीव नीचे (पृथिवी पर) रहने वाले थे इसलिए यह अर्वाक् स्रोत कहलाया । इस सृष्टि के जीव प्रकाश बहुल (सत्त्वगुण) रजोगुण एवं तमोगुण की अधिकता से युक्त थे ॥१७॥ इसीलिए इस सृष्टि के जीव दुःख की अधिकता ये युक्त सदा कर्मों को करते रहने वाले, बाह्य तथा आभ्यन्तर ज्ञान से युक्त तथा साधक थे । इस सर्ग के जीव मनुष्य थे ॥१८॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस तरह से मैंने आपको छह प्रकार के सर्गों को बतलाया । उनमें से महत् तत्त्व को ब्रह्माजी की पहली सृष्टि समझना चाहिए ॥१९॥ दूसरी सृष्टि तन्मात्राओं की सृष्टि है इसे भूतसर्ग कहते हैं । तीसरी सृष्टि इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाली वैकारिक सृष्टि समझनी चाहिए ॥२०॥ इस तरह ये बुद्धि पूर्वक उत्पन्न होने वाला प्राकृतिक सर्ग हैं । चौथा सर्ग मुख्यसर्ग है । स्थावरों

तुष्टि और सिद्धियाँ) ये तीनों प्रकार के वध मुक्ति से पहले विघ्न स्वरूप हैं । आन्ध्य बाधिर्य से लेकर विक्षिप्ता पर्यन्त, ये ग्यारह इन्द्रियों के विपर्यय रूप ग्यारह इन्द्रियवध हैं । आठ प्रकार की प्रकृतियों में से किसी प्रकृति में चित्त का लय हो जाने से अपने को मुक्त मान लेना ही प्रकृति तुष्टि है । संन्यास मात्र से अपने को कृत-कृत्य मान लेना ही उपादान तुष्टि है । समय के आ जाने पर सिद्धि अपने आप प्राप्त हो जायेगी, ध्यान आदि कष्टों को उठाने की कोई आवश्यकता नहीं है, इस प्रकार से सोचना काल नाम की तुष्टि है । भाग्योदय होने पर सिद्धि अपने आप हो जायेगी यही भाग्य सिद्धि है; इन चारो प्रकार की तुष्टियों का संबन्ध आत्मा से है अतएव ये आध्यात्मिक तुष्टियाँ कहलाती हैं । पदार्थों के उपार्जन रक्षण तथा व्यय आदि में होने वाले दोषों को देखकर उनसे विरति हो जाना ये बाह्य पाँच तुष्टियाँ हैं । शब्दादि विषय पाँच हैं अतएव बाह्य तुष्टियाँ भी पाँच है; इस तरह तुष्टियों की संख्या नौ है । उपदेश की अपेक्षा न करके स्वयं ही परमार्थ का निश्चय कर लेना ऊहा सिद्धि है । प्रसङ्गवशात् कही कुछ सुनकर उसी से ज्ञान की सिद्धि मान लेना शब्द सिद्धि है । गुरु से पढ़कर ही तत्त्व की प्राप्ति हो गयी इस तरह की भावना अध्ययन सिद्धि है । आध्यात्मिक आदि तीनों प्रकार के दुःखों का नाश हो जाना ही दुःख त्रयविघात की सिद्धि है । अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति हो जाना ही सुहृत सिद्धि है । तत्त्वज्ञों या तपस्वियों की सङ्गति की प्राप्ति ही दान सिद्धि है । इस प्रकार ये आठ सिद्धियाँ हैं ।

इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः । मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥२१॥
तिर्यक्स्त्रोतास्तु यः प्रोक्तस्तैर्यग्योन्यः स उच्यते । तदूर्ध्वस्त्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु संस्मृतः ॥२२॥
ततोऽर्वाक्स्त्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥२३॥
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः । पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ॥२४॥
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः । इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः ॥२५॥
प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः । सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२६॥

श्रीमैत्रेय उवाच

संक्षेपात्कथितः सर्गो देवादीनां मुने त्वया । विस्तराच्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तो मुनिवरोत्तम ॥२७॥

श्रीपराशर उवाच

कर्मभिर्भाविताः पूर्वैः कुशलाकुशलैस्तु ताः । ख्यात्या तया ह्यनिर्मुक्ताः संहारो ह्युपसंहृताः ॥२८॥
स्थावरान्ताः सुराद्यास्तु प्रजा ब्रह्मंश्चतुर्विधाः । ब्रह्मणः कुर्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसास्तु ताः ॥२९॥
ततो देवासुरपितॄन्मनुष्यांश्च चतुष्टयम् । सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥३०॥
युक्तात्मनस्तमोमात्रा ह्युद्रिक्ताऽभूत्प्रजापतेः । सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः ॥३१॥
उत्ससर्ज ततस्तां तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् । सा तु त्यक्ता तनुस्तेन मैत्रेयाभूद्विभावरी ॥३२॥
सिसृक्षुरन्यदेहस्थः प्रीतिमाप ततः सुराः । सत्त्वोद्रिक्ताः समुद्भूता मुखतो ब्रह्मणो द्विज ॥३३॥
त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूद्दिनम् । ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा ॥३४॥

(वृक्ष, लता, गुल्म आदि) को मुख्य कहते है ॥२१॥ पाँचवाँ जो तिर्यक् स्रोत कहा गया है उसे तिर्यग्योनि भी कहते हैं । छठा सर्ग ऊर्ध्वस्त्रोतों का सर्ग है इसे देवसर्ग (देवताओं की सृष्टि) कहते हैं ॥२२॥ उसके पश्चात् सातवाँ सर्ग अर्वाक् स्रोतों का है । यह मनुष्यों की सृष्टि है ॥२३॥ आठवाँ अनुग्रह सर्ग है । वह सात्त्विक एवं तामस है । ये (अन्तिम) पाँच वैकृत सर्ग है और पहले के तीन प्राकृत सर्ग कहे गये हैं ॥२४॥ नवाँ सर्ग कौमार सर्ग है, वह प्राकृत एवं वैकृत दोनों है । इस तरह प्रजापति के द्वारा किए गये नव सर्ग हैं ॥२५॥ ये प्राकृत तथा वैकृत हैं और जगत् के मूलकारण हैं । ये सृष्टि करने वाले जगदीश ब्रह्माजी की सृष्टियाँ हैं । अब तुम क्या सुनना चाहते हो ?॥२६॥ **श्रीमैत्रेयजी ने कहा—** हे मुने ! आपने देवताओं आदि की सृष्टियों का संक्षेप में वर्णन किया है । हे मुनिवरों में श्रेष्ठ! इसे मैं आपसे विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥२७॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हे मैत्रेय! सारी प्रजाएँ अपने पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मों से युक्त हैं । अतएव प्रलय काल में सबों का लय होने पर भी प्रजायें उन कर्मों से मुक्त नहीं होती है ॥२८॥ हे ब्रह्मन् ! स्थावरों (पर्वत आदि) से लेकर देवता आदि पर्यन्त चार प्रकार की प्रजाएँ हैं । जब ब्रह्माजी सृष्टि कर रहे थे उस समय की उनकी यह मानसी सृष्टि है ॥२९॥ उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने देवता, असुर, पितृगण तथा मनुष्य इन चारों की तथा जल की सृष्टि करने की इच्छा से अपने शरीर का उपयोग किया ॥३०॥ ब्रह्माजी की सृष्टि रचना से युक्त होने पर तमोगुण की मात्रा उद्रिक्त हुयी और ब्रह्माजी के जङ्घे से सर्वप्रथम असुर उत्पन्न हुए ॥३१॥ उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने उस तमोगुण प्रधान शरीर का परित्याग कर दिया । वह परित्यक्त शरीर ही हे मैत्रेय ! रात्रि हो गया ॥३२॥ उसके पश्चात् सृष्टि करने की इच्छा से दूसरे शरीर में स्थित ब्रह्माजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी । हे द्विज ! उसके बाद ब्रह्माजी के मुख से सत्त्वगुण प्रधान देवता उत्पन्न हुए ॥३३॥ उसके बाद ब्रह्माजी ने उस शरीर का भी परित्याग कर दिया और वह सत्त्व प्रधान शरीर ही दिन हो गया । इसीलिए रात्रि में

सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम् । पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे ॥३५॥
उत्ससर्ज ततस्तां तु पितॄन्सृष्ट्वापि स प्रभुः । सा चोत्सृष्टाभवत्सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता ॥३६॥
रजोमात्रात्मिकामन्यां जगृहे स तनुं ततः । रजोमात्रोत्कटा जाता मनुष्या द्विजसत्तम ॥३७॥
तामप्याशु स तत्याज तनुं सद्यः प्रजापतिः । ज्योत्स्ना समभवत्सापि प्राक्सन्ध्या याऽभिधीयते॥३८॥
ज्योत्स्नागमे तु बलिनो मनुष्याः पितरस्तथा । मैत्रेय सन्ध्यासमये तस्मादेते भवन्ति वै॥३९॥
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्येतानि वै प्रभोः । ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपाश्रयाणि तु ॥४०॥
रजोमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्। ततः क्षुद् ब्रह्मणो जाता जज्ञे कामस्तया ततः॥४१॥
क्षुत्क्षामानन्धकारेऽथ सोऽसृजद्भगवांस्ततः । विरूपाः श्मश्रुला जातास्तेऽभ्यधावंस्ततः प्रभुम् ॥४२॥
मैवं भो रक्ष्यतामेष यैरुक्तं राक्षसास्तु ते। ऊचुः खादाम इत्यन्ये ये ते यक्षास्तु जक्षणात् ॥४३॥
अप्रियेण तु तान्दृष्ट्वा केशाः शीर्यन्त वेधसः। हीनाश्च शिरसो भूयः समारोहन्त तच्छिरः ॥४४॥
सर्पणात्तेऽभवन् सर्पा हीनत्वादहयः स्मृताः । ततः क्रुद्धो जगत्स्रष्टा क्रोधात्मानो विनिर्ममे ।
वर्णेन कपिशेनोग्रभूतास्ते पिशिताशनाः ॥४५॥
गायतोऽङ्गात्समुत्पन्ना गन्धर्वास्तस्य तत्क्षणात्। पिबन्तो जज्ञिरे वाचं गन्धर्वास्तेन ते द्विज ॥४६॥
एतानि सृष्ट्वा भगवान्ब्रह्मा तच्छक्तिचोदितः । ततः स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वयसोऽसृजत् ॥४७॥

असुर बलवान होते हैं और दिन में देवता बलवान् होते हैं ॥३४॥ उसके बाद ब्रह्माजी ने सत्त्वगुण प्रधान दूसरे शरीर को धारण किया और अपने को उसका पिता के समान मानते हुए उन्होंने उससे पितृगण की रचना की ॥३५॥ पितृगण की रचना करने के पश्चात् जगत् के स्वामी ब्रह्माजी ने उस शरीर का भी परित्याग कर दिया । ब्रह्माजी के द्वारा छोड़ा गया वह शरीर ही दिन तथा रात्रि के बीच में स्थित रहने वाली सन्ध्या के रूप में परिणत हो गया॥३६॥ उसके बाद ब्रह्माजी ने रजोगुण प्रधान दूसरे शरीर को धारण किया और हे द्विजोत्तम ! उससे रजोगुण प्रधान मनुष्यों की सृष्टि हुयी ॥३७॥ उसके पश्चात् प्रजापति ने शीघ्र उस शरीर का भी त्याग कर दिया और वह शरीर ज्योत्स्ना (प्रभात) काल के रूप में परिणत हो गया । उसी को (ज्योत्स्ना को) ही पूर्व सन्ध्या (प्रातःकाल) कहते हैं ॥३८॥ प्रातःकाल के आने पर मनुष्य तथा सायं काल के आने पर पितृगण बलवान् होते हैं ॥३९॥ इसीलिए ज्योत्स्ना (प्रातःकाल) रात्रि, दिन और सायंकाल ये चारो प्रभु ब्रह्माजी के शरीर हैं और तीनो गुणों के आश्रय हैं ॥४०॥ उसके पश्चात् प्रजापति ने दूसरे रजोगुण प्रधान शरीर को धारण किया और उससे क्षुधा (भूख) की उत्पत्ति हुयी और उससे (क्षुधा से) काम उत्पन्न हुआ ॥४१॥ उसके पश्चात् अन्धकार में स्थित होकर भगवान् प्रजापति ने सृष्टि की, उससे कुरूप, दाढी-मूछ वाले प्राणी उत्पन्न हुए और वे ब्रह्माजी की ओर उन्हें खा जाने के लिए दौड़े ॥४२॥ उन सबों में से जिन सबों ने कहा इन्हे मत खाओ इनकी रक्षा करो, वे राक्षस कहलाये और जो खाना चाहते थे वे खाने की वासना से युक्त होने के कारण यक्ष कहलाए ॥४३॥ उन जीवों की इस अनिष्ट प्रवृत्ति को देखकर ब्रह्माजी के शिर से उनके केश गिर गये और उसके बाद वे गिरे हुए केश उनके सिर पर पुन चढ गये ॥४४॥ वे ऊपर चढ़ने के कारण सर्प कहलाये और नीचे गिरने के कारण अहि कहलाये । उसके पश्चात् जगत् स्रष्टा ब्रह्माजी क्रोधित होकर क्रोध युक्त जीवों की रचना किए । उन जीवों का वर्ण कपिश था, वे उग्र स्वभाव वाले तथा पिशिताशी (मांसभक्षी) थे ॥४५॥ फिर गान करते समय उनके शरीर से शीघ्र ही गन्धर्व उत्पन्न हुए हे द्विज ! वे वाणी का उच्चारण करते हुए उत्पन्न हुए थे इसीलिए गन्धर्व कहलाये ॥४६॥ इन सबों की सृष्टि के ऐश्वर्य से सम्पन्न ब्रह्माजी, उनके पूर्व कर्मों के द्वारा प्रेरित

अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोऽजाः स सृष्टवान्। सृष्टवानुदराद्गाश्च पार्श्वाभ्यां च प्रजापतिः ॥४८॥
पदभ्यां चाश्वान्समातङ्गान्रासभान्गवयान्मृगान्। उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यङ्कूनन्यांश्च जातयः ॥४९॥
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे। त्रेतायुगमुखे ब्रह्मा कल्पस्यादौ द्विजोत्तम ।
सृष्ट्वा पश्वोषधीः सम्यग्युयोज स तदाध्वरे ॥५०॥
गौरजः पुरुषो मेषश्चाश्वाश्वतरगर्दभाः। एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे ॥५१॥
श्वापदा द्विखुरा हस्ती वानराः पक्षिपञ्चमाः। औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥५२॥
गायत्रं च ऋचश्चैव त्रिवृत्सोमं रथन्तरम्। अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥५३॥
यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा। बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥५४॥
सामानि जगतीछन्दः स्तोमं सप्तदशं तथा। वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात्॥५५॥
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च। अनुष्टुभं च वैराजमुत्तरादसुजन्मुखात् ॥५६॥
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे। देवासुरपितॄन् सृष्ट्वा मनुष्यांश्च प्रजापतिः ॥५७॥
ततः पुनः ससर्जादौ सङ्कल्पस्य पितामहः। यक्षान् पिशाचान्गान्धर्वान् तथैवाप्सरसां गणान् ॥५८॥
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान्। अव्ययं च व्ययं चैव यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ॥५९॥
तत्ससर्ज तदा ब्रह्मा भगवानादिकृत्प्रभुः । तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्या प्रातिपेदिरे ।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥६०॥
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥६१॥

होकर उनकी स्वच्छन्दता पूर्वक अपनी आयु से रचना की ॥४७॥ उन्होंने अपने वक्षःस्थल से भेड़ों की रचना की तथा अपने मुख से बकरियों की सृष्टि की, प्रजापति ने अपने उदर तथा पार्श्व भाग से गौओं की सृष्टि की ॥४८॥ उन्होंने अपने दोनों चरणों से घोड़े, हाथी, गधे, बनगाय, मृग, ऊँट, खच्चर और न्यङ्कु प्रभृति पशुओं की रचना की॥४९॥ उनके रोमों से फल-फूल आदि ओषधियाँ उत्पन्न हुयीं । हे द्विजोत्तम ! कल्प के प्रारम्भ में ही ब्रह्माजी ने पशुओं तथा ओषधियों की रचना करके त्रेतायुग में यज्ञादि कर्मों में उनका उपयोग किया ॥५०॥ गौ, बकरी, पुरुष, भेड़, खच्चर और गधे, ये सभी ग्राम्य (गावों में रहने वाली) पशु हैं । अब तुम अरण्य में रहने वाले पशुओं को मुझसे जानो ॥५१॥ जङ्गल में रहने वाले श्वापद (व्याघ्र आदि) दोखुर वाले, (नीलगाय आदि) हाथी, बन्दर, पाँचवे पक्षी छठे जल के जीव तथा सातवें सरीसृप आदि हुए ॥५१-५२॥ उसके बाद अपने पूर्वमुख से ब्रह्माजी ने गायत्री, ऋक्, त्रिवृत्सोम, रथन्तर और अग्निष्टोम आदि (सोमसंस्था यागों) की रचना की ॥५३॥ दक्षिण मुख से यजुष् त्रैष्टुप् छन्द तथा पञ्चदश स्तोम, बृहत्साम, तथा उक्थ की सृष्टि की ॥५४॥ उन्होंने अपने पश्चिम मुख से, सामों, जगतीछन्द, सप्तदश स्तोम, वैरूप और अतिरात्र को उत्पन्न किया ॥५५॥ अपने उत्तरमुख से उन्होंने एकविंशति स्तोम अथर्ववेद, आप्तोयमाण, अनुष्टुप् छन्द और वैराज की सृष्टि की ॥५६॥ इस प्रकार उनके शरीर से समस्त ऊँच-नीच प्राणी, उत्पन्न हुए उसके पश्चात् कल्प का आरम्भ होने पर पितामह ब्रह्माजी ने देवता, असुर तथा पितरों की रचना करके मनुष्यों की रचना की । उसी समय ब्रह्माजी ने यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओं के समूह, नर, किन्नर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग, सर्प, अव्यय तथा व्यय तथा यह जो कुछ भी जड एवं जङ्गम (चर एवं अचर) हैं इन सबों के आदि कर्ता ब्रह्माजी ने रचना की । उनमें से जिन जीवों के जैसे कर्म पूर्वकल्प में थे, बार-बार सृष्टि होने पर उन जीवों की उसी में प्रवृत्ति हो जाती है ॥५७-६०॥ उस समय उन सबों को अपनी पूर्वभावना के अनुसार हिंसा,

इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः। नानात्वं विनियोगं च धातैव व्यसृजत्स्वयम् ॥६२॥
नाम रूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम्। वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥६३॥
ऋषीणां नामधेयानि यथा वेदश्रुतानि वै। तथा नियोगयोग्यानि ह्यन्येषामपि सोऽकरोत् ॥६४॥
यथर्तुष्वृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये। दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥६५॥
करोत्येवंविधां सृष्टिं कल्पादौ स पुनः पुनः। सिसृक्षाशक्तियुक्तोऽसौ सृज्यशक्तिप्रचोदितः ॥६६॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

छठा अध्याय

श्रीमैत्रेय उवाच

अर्वाक्स्रोतास्तु कथितो भवता यस्तु मानुषः। ब्रह्मन्विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा तमसृजद्यथा ॥१॥
यथा च वर्णानसृजद्यद्गुणांश्च प्रजापतिः। यच्च तेषां स्मृतं कर्म विप्रादीनां तदुच्यताम् ॥२॥

श्रीपराशर उवाच

सत्याभिध्यायिनः पूर्वं सिसृक्षोर्ब्रह्मणो जगत्। अजायन्त द्विजश्रेष्ठ सत्त्वोद्रिक्ता मुखात्प्रजाः ॥३॥
वक्षसो रजसोद्रिक्तास्तथा वै ब्रह्मणोऽभवन्। रजसा तमसा चैव समुद्रिक्तास्तथोरुतः ॥४॥

अंहिसा, मृदुता, कठोरता, धर्म-अर्धम, सत्य, मिथ्या ये सब उन्हें प्राप्त हो जाते हैं ॥६१॥ इस तरह प्रभु ब्रह्माजी ने ही इन्द्रियों के विषयभूत तथा शरीर में विभिन्नता तथा विनियोग की रचना स्वयं की है ॥६२॥ ब्रह्माजी ने स्वयं कल्प के प्रारम्भ में देवता आदि जीवों के नाम तथा रूप का तथा उनके कर्मों का विस्तार वेदवाक्यानुसार किया है॥६३॥ ऋषियों तथा अन्य प्राणियों के भी वेदानुसार नाम यथा योग्य उनके कर्मों का निर्देश स्वयं ब्रह्माजी ने ही किया है॥६४॥ जिस तरह भिन्न-भिन्न ऋतुओं के बार-बार आने पर भी उनके चिह्न, नाम तथा रूप पहले के ही जैसा रहते हैं; उसी तरह युग के आदि में भी उनके भाव पहले के ही जैसे देखे जाते हैं ॥६५॥ सृष्टि करने की इच्छा से युक्त ब्रह्माजी, कल्प के प्रारम्भ में बारम्बार जीवों की कर्मशक्ति से प्रेरित होकर इस प्रकार की सृष्टि करते हैं ॥६६॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, दुर्ग-पुर-खर्वट-ग्रामादि पृथिवी के विभाग, अन्नों की उत्पत्ति तथा यश में बाधा करने वाले को तामिस्र आदि नरकों की प्राप्ति का वर्णन

श्रीमैत्रेय महर्षि ने कहा— आपने अर्वाक् स्रोत मनुष्यों का जो वर्णन किया है हे ब्रह्मन् ! जिस तरह से ब्रह्माजी ने उनकी सृष्टि की उसे आप मुझे विस्तार पूर्वक सुनाइये ॥१॥ प्रजापति ब्रह्माजी ने जैसे वर्णों की सृष्टि की तथा उनके जिन गुणों की सृष्टि की। विप्र आदि (वर्णों के) जो कर्म बतलाये गये हैं, आप उसे हमें सुनाइये ॥२॥
श्रीपराशर महर्षि ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! जगत् की सृष्टि करने की इच्छा वाले सत्यसङ्कल्प ब्रह्माजी के मुख से सत्त्वगुण प्रधान प्रजा उत्पन्न हुयी ॥३॥ उसके पश्चात् उनके वक्षःस्थल से रजोगुण प्रधान प्रजा उत्पन्न हुयी। उनके